ओ३म्

‘ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को कौन जानता है?’

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

संसार में ईश्वर को मानने वाले और न मानने वाले दो श्रेणियों के लोग हैं। ईश्वर के अस्तित्व को न मानने वालों को नास्तिक कहते हैं। जो नास्तिक लोग हैं उनसे तो यह अपेक्षा की ही नहीं जा सकती है कि वह ईश्वर के सत्य स्वरूप जानते हैं। प्रश्न है कि जो ईश्वर को मानते हैं, क्या वह सब ईश्वर के सत्य स्वरूप को भी जानते हैं या नहीं? इसका उत्तर है कि नहीं, सभी आस्तिक लोग ईश्वर को सत्य स्वरूप को नहीं जानते। ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को कुछ थोड़े लोग ही जानते हैं। ईश्वर को यथार्थ रूप में जानने वाले वे लोग हैं जो वेद, सत्यार्थप्रकाश सहित ऋषि दयानन्द के साहित्य एवं वेदांग, उपांग सहित उपनिषदों व मनुस्मृति आदि का यथार्थ ज्ञान रखते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह भी कहेंगे कि जो लोग वैदिक सनातन धर्मी आर्य हैं, निरन्तर स्वाध्याय करते हैं, चिन्तन व मनन करते हैं, जो शुद्ध भोजन व छल-कपट रहित शुद्ध व्यवहार करते हैं, वह लोग ही ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं। इतर जो आस्तिक लोग हैं, जो कहते हैं कि वह ईश्वर को मानते हैं, उनके बारे में यह कह सकते हैं कि उनका ईश्वर का ज्ञान अधूरा व कुछ यथार्थ स्वरूप के विपरीत होने से मिथ्याज्ञान से युक्त ज्ञान है। जो व्यक्ति मूर्ति पूजा करता है, अवतारवाद को मानता है, सामाजिक भेदभाव से युक्त जिसका जीवन है, जो फलित ज्योतिष को मानता है, जो वैदिक रीति से ईश्वरोपासना नहीं करता, उसके बारे में यह कहना होगा कि वह ईश्वर के स्वरूप को यथार्थ रूप में नहीं जानता। कुछ ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि ईश्वर ऊपर या किसी विशेष आसमान व स्थान पर रहता है, वह भी अविद्या से ग्रस्त होने के कारण ईश्वर के यथार्थ स्वरूप से परिचित नहीं है। ऐसे भी मत हैं जिनके अनुयायी ईश्वर को पापों को क्षमा करने वाला मानते हैं। पापों को क्षमा करने का मतलब होता है कि पाप को बढ़ावा देना। यदि हमारे पाप क्षमा होने लगें या हमारी गलतियां क्षमा होने लगें तो फिर हम अधिक लापरवाह हो जाते हैं और बार बार गलती करते हैं क्योंकि हम जानते हैं कि हम क्षमा मांग कर अपराध व उसके दण्ड से बच जायेंगे। पाप क्षमा के मिथ्या सिद्धान्त से बुराईयां व अपराध बढ़ते हैं। जो लोग यह कहते व मानते हैं कि उनका ईश्वर अमुक मत के अनुयायियों के पापों व गलतियों को क्षमा कर देता है, वह उनके मत वाले भी ईश्वर के सत्य स्वरूप को यथार्थतः नहीं जानते है। जो लोग भोले भाले भूखे, निर्धन, रोगी, कमजोर व दुःखी लोगों का धर्म परिवर्तन करने में संलग्न होते हैं, वह भी सच्चे ईश्वर को नहीं जानते व जान सकते। उनका यह काम धर्म सम्मत न होकर धर्म विरोधी होता है। इसके पीछे के उद्देश्य भी अच्छे न होकर बुरे ही होते हैं। ऐसे लोगों को धर्म विषय चर्चा करने के लिए आमंत्रित किया जाये तो सामने नहीं आते परन्तु येन केन प्रकारेण धर्मान्तरण करने में तत्पर रहते हैं। हमें लगता है कि ऐसे लोगों को इनके इन कर्मों का फल मृत्यु के बाद पुनर्जन्म में ही प्रायः मिलता है। उपेक्षित व निर्बल लोगों का धर्म परिवर्तन न कर स्वयं को धार्मिक कहलाने वाले लोगों को इनकी सच्चे हृदय से सेवा करनी चाहिये, यही उनका यथार्थ धर्म है। ईश्वर सभी मनुष्यों से ऐसी ही अपेक्षा करता है।

ईश्वर ने इस सृष्टि को, मनुष्यों व इतर सभी प्राणियों को बनाया है। यह सृष्टि ईश्वर ने जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्मों के अवशिष्ट कर्मों के फलों के भोग के लिए बनाई हैं। मनुष्य अपना भोग भोगते हैं और मोक्ष प्राप्ति के लिए परोपकार व सेवा आदि कार्य करते हैं। पशु व पक्षी भी अपना अपना भोग भोगते हैं। ईश्वर ने किसी को यह अधिकार नहीं दिया कि वह अपने भोजन व जीभ के स्वाद के लिए पशुओं को काट कर, उन्हें मार कर व उनकी हत्या कर उनका मांस आदि का भोजन के रूप में सेवन करे। यह ईश्वर की व्यवस्था का विरोध व ईश्वर को चुनौती है। यदि कोई मनुष्य, मत व सम्प्रदाय ऐसा मानता है कि

पशुओं का मांस खाने व अण्डे आदि का तामसिक भोजन करने में कोई पाप नहीं है तो वह भी बड़ी भूल व गलती कर रहे हैं। ऐसे लोग भी ईश्वर का सत्य स्वरूप नहीं जानते। इस प्रकार चिन्तन करने से हम इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जो मनुष्य वेदों के यथार्थ स्वरूप से परिचित हैं तथा जिसने वेदानुकूल वेदों के अंग व उपांग रूप सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, आर्याभिविनय, पंचमहायज्ञविधि आदि ग्रन्थों को पढ़ा व समझा है, वही ईश्वर के सत्य स्वरूप को जानते हैं। ऐसा व्यक्ति न तो मांसाहार कर सकता है, न किसी का शोषण कर सकता है, न किसी से अन्याय कर सकता है, ऐसा व्यक्ति ईश्वर के सत्य स्वरूप का उपासक होगा, वह परोपकार व सेवा भावी होगा, माता-पिता व आचार्यों का आदर व सम्मान करने वाला होगा, सद्कर्मों का सेवन करने वाला होगा तथा नियमित स्वाध्याय करने के साथ वैदिक व आर्य विद्वानों के ज्ञानयुक्त उपदेशों का श्रवण करेगा। ऐसे व्यक्ति के बारे में हम यह कह सकते हैं कि वह ईश्वर का सत्य स्वरूप जानता है।

हमारी दृष्टि में ईश्वर को मानने वाले तो सभी आस्तिक मतों के लोग हैं परन्तु ईश्वर का सत्य व यथार्थ स्वरूप जानने वाले कुछ गिने चुने लोग ही होते हैं जो कि अधिकांश में वैदिक सनातन धर्मी आर्यसमाज के अनुयायी ही सिद्ध होते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने आचरण व वाणी से प्रचार कर अन्य मतों के आचार्यों व अनुयायियों की अविद्या समाप्त करने का प्रयास करें जिससे सब एक मतस्थ होने की दिशा में कुछ आगे बढ़ सकें। हमारा निष्कर्ष यह है कि संसार में ईश्वर का सत्य स्वरूप जानने वाले कम ही लोग हैं और जो उसे जानते भी हैं, उनमें से बहुत कम ही ईश्वर की यथार्थ उपासना करते हैं। ईश्वर के सत्यस्वरूप के प्रचार व प्रसार में आर्यसमाज का उत्तरदायित्व सबसे अधिक है। इसलिए आर्यसमाज को शिथिलता का त्याग कर प्रभावशाली प्रचार करने की आवश्यकता है। इति ओ३म् शम्।

-मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला-2
देहरादून-248001
फोनः09412985121

ओ३म्

‘पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय रचित मनुस्मृति के प्रकाशन का सुखद समाचार’

-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।

आर्यसमाज की पहचान सत्य व प्रामाणिक धार्मिक व इतर ग्रन्थों के अध्ययनशील लोगों के रूप में होती है। संसार में आज जितने भी मत व पन्थ प्रचलित है, शायद किसी के पास इतना साहित्य नहीं है जितना कि वैदिक सनातन धर्मी आर्यसमाज के पास। दूसरे मतों के अनुयायी अपने एक व कुछ प्रमुख ग्रन्थों के अध्ययन व उसके पाठ को ही धर्म मानते हैं और उन्हीं तक सीमित रहते हैं जबकि आर्यसमाज जो कुछ पढ़ा जाता है उसकी सत्यासत्य की परीक्षा कर उसे सत्य होने पर ही स्वीकार करते हैं। यदि ऐसा न होता तो महर्षि दयानन्द ने सत्यमत के प्रचार प्रसार को अपने जीवन का लक्ष्य न बनाया होता। वह भी औरों की तरह कुछ ग्रन्थों को पढ़कर उनका पाठ, चिन्तन-मनन करने व योगाभ्यास आदि में ही अपना जीवन बिता सकते थे। आज ईश्वरीय ज्ञान वेद जो सृष्टि के आदि ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित हैं, प्रायः सभी आर्यसमाजों व इसके प्रमुख अनुयायियों के घरों में विद्यमान हैं। न केवल ग्रन्थ अपितु अनेक आर्य विद्वानों द्वारा वेदों पर हिन्दी व अंग्रेजी में की गई टीकायें भी आर्यों के पास मिल जायेंगी। सत्यार्थप्रकाश और ऋषि दयानन्द के अन्य ग्रन्थ भी सभी आर्यसमाजी परिवारों व इसके शुभचिन्तकों के घरों में उपलब्ध रहते हैं। हम जन्मजात

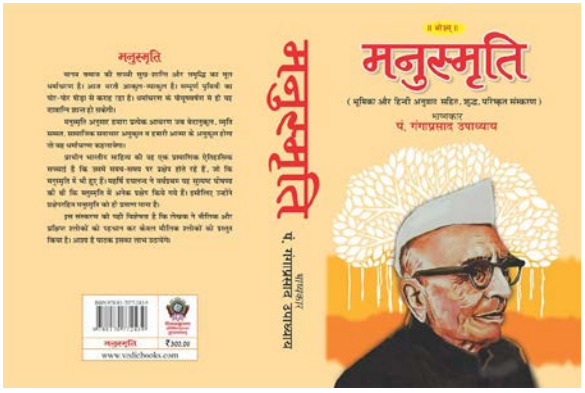

आर्यसमाजी नहीं थे। 18 वर्ष की आयु में अपने एक सहपाठी मित्र के द्वारा आर्यसमाज के सम्पर्क में आये और हमें आर्यसमाज की विचारधारा, मान्यतायें व सिद्धान्त इतने प्रिय व सत्य अनुभव हुए कि हमें पता ही नहीं चला कि कब हम वेदों व आर्यसमाज सहित ऋषि दयानन्द के अनुयायी बन गये।

आज हम आर्यसमाज के प्रमुख विद्वान पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी द्वारा रचित मनुस्मृति की चर्चा कर रहे हैं। आज समाज के अनेक लोगों द्वारा मनुस्मृति का विरोध किया जाता है। मनुस्मृति का विरोध करने वाले लोगों ने न तो मनुस्मृति का अध्ययन किया होता है और न यह जानने की कोशिश की होती है कि सृष्टि के प्रथम व द्वितीय पीढ़ी के व्यक्ति जो वेदों के परम विद्वान व देश के प्रथम राजा व राजर्षि हुए, उनकी अपनी निजी वेदसम्मत मान्यतायें क्या थीं और अरबों व करोड़ों वर्ष पुरानी मनुस्मृति में महाभारतकाल के बाद स्वार्थी व अज्ञानी मनुष्यों ने किस मात्रा में प्रक्षेप कर उसके यथार्थस्वरूप को बिगाड़ा है। ऋषि दयानन्द जी के भक्त पंडित राजवीर शास्त्री जी ने आर्य विद्वान डा. सुरेन्द्र कुमार जी के साथ मिल कर अनुसंधान किया तो पाया कि वर्तमान समय में प्रचलित मनुस्मृति में 56 प्रतिशत श्लोक प्रक्षिप्त हैं। जिन लोगों ने यह श्लोक बनाकर प्रक्षिप्त किये थे, वे लोग वेदों के विपरीत अनेक मान्यताओं के पोषक थे जिसका आधार उनका अज्ञान व स्वार्थ था। पं. राजवीर शास्त्री जी के अनुसंधान का परिणाम यह है कि 2685 श्लोकों वाली मनुस्मृति में 1502 श्लोक प्रक्षिप्त हैं और मात्र 1183 श्लोक मनु महाराज के हैं जो वेदों के सिद्धान्तों के अनुरूप हैं। मनुस्मृति के इन शुद्ध श्लोकों से हमारे ब्राह्मण व क्षत्रिय आदि वर्णों के लिए तो कठिनाई हो सकती है परन्तु शूद्र वर्णों के लोगों के लिए वह हितकर व लाभप्रद ही हैं। यह भी बता दें कि मनु के अनुसार वर्णव्यवस्था का अधार मनुष्य की जन्मना जाति न होकर उनके गुण, कर्म व स्वभाव हैं। वेदों को पढ़ने का अवसर मिलने पर भी जो वेद पढ़ नहीं पाता या नहीं पढ़ता और जो अल्प ज्ञान वाला होता है, वैदिक काल में उसी की संज्ञा शूद्र होती थी। ऐसे अनेक उदाहरण आज भी विद्यमान है कि जब एक वर्ण के व्यक्ति व उसकी सन्तानों की उससे उत्तम वर्णों में उन्नति हुई हो। अतः मनुस्मृति व मनु जी का विरोध करने वालों को मनुस्मृति का गम्भीर अध्ययन कर यथार्थ स्थिति जानकर ही उनकी स्तुति व निन्दा में प्रवृत्त होना चाहिये। ऐसा न कर बिना अध्ययन किये आलोचना करना घोर पापरूप कर्म है जो ईश्वर के द्वारा दण्डनीय है।

आर्यजगत में आर्य साहित्य प्रकाशित करने वालों में सबसे प्रसिद्ध नाम 'विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली' का है जो विगत 91 वर्षों से आर्यसमाज के सभी प्रकार के साहित्य का प्रकाशन कर रहे हैं। सम्प्रति श्री अजय आर्य इसके संचालक व स्वामी है। आप प्रत्येक वर्ष अनेक नये व अप्राप्य ग्रन्थों का प्रकाशन करते हैं। विगत माह अजमेर के ऋषि मेले की यात्रा में पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय रचित मनुस्मृति के प्रकाशन पर आपसे चर्चा हुई थी। कल उनके द्वारा प्रकाशित मासिक पत्र 'वेद प्रकाश' का दिसम्बर, 2016 हमें अंक प्राप्त हुआ जिसमें आपने मुख पृष्ठ पर पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय रचित मनुस्मृति की भूमिका और हिन्दी अनुवाद सहित शुद्ध, परिष्कृत संस्करण के प्रकाशन की सूचना दी है। इस ग्रन्थ मे 664 पृष्ठ होंगे और इसका मूल्य मात्र 300 रूपये रक्खा गया है। हमें आर्यसमाज के साहित्य जगत की महत्वपूर्ण गतिविधियों का यह समाचार वर्तमान समय का प्रमुख समाचार प्रतीत होता है। पाठकों के लिए इस मनुस्मृति की एक झलक भी प्रस्तुत करते हैं। मनुस्मृति का 5/32 श्लोक 'सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्। योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मद्वारिशुचि शुचिः।।' है। ''मन की शुद्धि ही सबसे बड़ी शुद्धि'' शीर्षक देकर अनुवादक व सम्पादक ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है कि '(सर्वेषामेव शौचाानाम्) सब शोचों (स्वच्छताओं) में (अर्थ शौचं परं स्मृतम्) धन की शुद्धि सबसे बढ़कर है। (य अर्थे शुचि) जो धन कमाने में शुद्ध है (स शुचिः) वह वस्तुतः शुद्ध है (न मृत् + वारि + शुचिः शुचिः) मिट्टी और जल की शुद्धि शुद्धि नहीं। अर्थात् जिसके धन कमाने के साधन शुद्ध नहीं हैं वह कितना ही अन्य बातों में शुद्ध क्यों न हो-शुद्ध नहीं कहा जा सकता।' यह बात मनु जी ने आज से करोड़ो वा लगभग दो अरब वर्ष पहले कही थी। देश की जनता वर्तमान में अर्थ की अशुचिता से त्रस्त है। अमीरी व गरीबी का भेद इतना बढ़ गया है कि रात दिन काम करके भी करोड़ों लोग अपना दो समय अपना पेट नहीं भर पा रहे हैं। ऐसे लोगों की शिक्षा व चिकित्सा आदि की बात करना ही अप्रासंगिक है। अर्थ शुचिता के प्रायः समाप्त हो जाने और देश व साधारण जनता पर इसके दुष्प्रभाव के कारण केन्द्र सरकार को बड़े नोटों का प्रचलन बन्द करना

पड़ा। आश्चर्य है कि हमारे देश में जनता के नेता कहलाने वाले विपक्षी दलों के लोग इस जनकल्याण के कार्य का विरोध कर रहे हैं। यदि वह सहयोग करते तो देश काले धन की अर्थव्यवस्था से बाहर निकल सकता था। हमें लगता है कि जब तक देश में अर्थ शुचिता नहीं होगी देश के नागरिक सभ्य व संस्कारवान् नहीं कहे जा सकते। वेद का कार्य मनुष्यों को शुचिता का जीवन व्यतीत करते हुए संस्कारों से पुष्ट करना ही है।

आर्य विद्वान डा. ज्वलन्तकुमार शास्त्री ने पं. गंगाप्रसाद उपाधाय जी की मनुस्मृति के विषय में लिखा है 'उपाध्याय जी का मनुस्मृति का एक शुद्ध परिष्कृत (प्रक्षिप्तांश रहित) संस्करण विस्तृत भूमिका और हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित हुआ था। सम्भवतः इसके दो ही संस्करण प्रकाशित हुए थे -1936 तथा 1939 ई. में। चिरकाल से यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है।' यह बतादें कि मनुस्मृति में ग्यारह अध्याय हैं। पहला अध्याय सृष्टि की उत्पत्ति तथा धर्मोत्पत्ति पर है। दूसरे अध्याय में संस्कार एवं ब्रह्मचर्याश्रम का वर्णन है। तृतीय अध्याय में समावर्त्तन, विवाह, पंचयज्ञ के विधानों की चर्चा है। चतुर्थ अध्याय में गृहस्थान्तर्गत आजीविकायें और व्रतों का विधान किया गया है। मनुस्मृति के पांचवें अध्याय में भक्ष्याभक्ष्य, प्रेतशुद्धि, द्रव्य शुद्धि तथा स्त्री धर्म विषयक विचार व विधान हैं। छठे अध्याय में वानप्रस्थ और संन्यास धर्म का विषय वर्णित है। सातवां अध्याय राजधर्म विषय पर है। आठवां अध्याय राजधर्मान्तर्गत व्यवहारों (मुकदमों) के निर्णय पर प्रकाश डालता है। नवम् अध्याय में राजधर्मान्तर्गत व्यवहारों के निर्णय को रखा गया है। दसवां अध्याय चातुर्वण्य धर्मान्तर्गत वैश्य, शूद्र के धर्म तथा चातुर्वण्य धर्म का उपंसहार है। अन्तिम ग्यारहवें अध्याय में प्रायश्चित विषय का वर्णन है। इन सभी विषयों को मनुस्मृति में पढ़कर आप भगवान् मनु के प्रशंसक बन जायेंगे। जो विरोध करते हैं वह भी यदि पढ़ेंगे तो वह भी आलोचना नहीं कर सकेंगे क्योंकि मनु तो समाज को सुव्यवस्थित रूप देने वाले ऋषि थे। उन्होंने किसी मनुष्य के हितों के विरुद्ध कोई शब्द नहीं लिखा। समाज के सभी मनुष्य उन्हें प्रिय व मित्रवत् थे। लेख को विराम देने से पूर्व हम निवेदन करते हैं कि इस ग्रन्थ के प्रकाशित होने की प्रतीक्षा करें और प्रकाशित होने पर इसे अवश्य मंगायेंख् स्वयं पढ़े व अन्यों को भी पढ़ने की प्रेरणा दें। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

मनमोहन कुमार आर्य
पताः 196 चुक्खूवाला-2
देहरादून-248001
फोनः09412985121